वह मैं ही थी

मृदुला गर्ग

वह मैं ही थी

कहानी

मृदुला गर्ग

जब भी उमा को वह औरत याद आती, एक ख़ौफ़ उसके वजूद पर तारी हो जाता। वह औरत, जो कमरे में उसी पलंग पर बच्चा पैदा करते मर गयी थी, जिस पर आजकल उसे लेटना पड़ता था। कई बार सोचती थी अपना बिस्तर उठा कर दूसरे कमरे में ले जाये और फ़र्श पर बिछा कर सो रहे। पर अपने ख़ौफ़ को दूसरों पर ज़ाहिर करना इतना आसान नहीं था। मनीष पर तो बिल्कुल नहीं। उससे कहा तो वह अबूझ आँखों से उसे देखता रहेगा और अपनी बात समझा न पाने का डर उसकी दहशत को और गाढ़ा कर देगा। माँजी से कहा तो वे वही क़िस्सा बयान करना शुरू कर देंगी, जिससे उसे ख़ौफ़ आता था।

जब वह इस घर में आयी, तुम्हारी तरह गर्भवती थी। यहाँ कारख़ने की नयी शाख़ा शुरू हुई तो उसके पति का तबादला अचानक बड़े शहर से इस क़स्बे में हो गया। आख़िरी महीना बहुत बुरा बीता उसका। रात को बिस्तर पर लेटती तो घण्टे-आधे घण्टे में उठ बैठती। छाती मसल कर कहती, साँस नहीं आ रही। बार-बार यही कहती, साँस नहीं आती। लोग सुनते और कहते, सब्र करो, आदत पड़ जायेगी। यह जो कारख़ाने में सीमेंट उड़ता है, वही हवा को भारी बना देता है, उसी से साँस नहीं आती। किसी को नहीं आती, शुरू-शुरू में, फिर आदत पड़ जाती है। सबको पड़ गयी तो उसे क्यों नहीं पड़ेगी। वह पूरी -पूरी रात बैठ कर गुज़ार देती। कोशिश करती ज़्यादा चले-फिरे नहीं, पति को नींद पूरी करनी थी न ! कारख़ाने में नय-नया तबादला, काम का बोझ इतना कि बिस्तर पर लेटते ही नाक बजाने लगता।

फिर भी दिन में जब-तब वह उससे कह उठती। वह जानती है, वह बच्चे को जन्म देने में बचेगी नहीं। शुरू-शुरू में पति सुनता और सुस्त हो जाता। कैसे बुरे वक़्त, इस क़स्बे में पटका गया। न अस्पताल, न डॉक्टर, पर करता क्या बेचारा ! न ख़ुद की माँ ज़िन्दा, न पत्नी की, छोड़ता भी तो कहाँ छोड़ता उसे ? उसके सामने वह यही दिखलाता कि घबराने की कोई बात नहीं थी। उसकी बात हँसी में टालते-टालते आदत पड़ गयी और धीरे-धीरे उसने ध्यान देना बन्द कर दिया। रोज़-रोज एक ही बात, कोई कब तक सुने ?

उमा सुनती और सोचती, पर यह तो मेरी कहानी है। बिल्कुल मेरी कहानी। पर कहती नहीं। कैसे कहती ? मनीष की माँ ज़िन्दा थी और उसकी ख़ुद की भी।

फिर उस औरत पर सफ़ाई का फ़ितूर सवार हो गया। रात-रात भर न सोये, न साँस ले, बस घर को सजाती

घूमे। कलात्मक रुचि की थी, चित्र बनाया करती थी। अब क्या हुआ कि दिन-रात कैनवास पर रंग उंडेलने में अपने को खपा दिया। घर की तमाम दीवारें अपने बनाये चित्रों से पाट दीं। फ़र्श की जो धुलाई-रगड़ाई की कि पूछो मत। कम्पनी की मेज़-कुर्सियाँ उठा कर स्टोर में बन्द कर दीं। यह पलंग उसने ख़ुद खड़े हो कर बढ़ई से बनवाया था। पलंग क्या तख़्त समझो। हाँ, लकड़ी बढ़िया लगवायी और बनवाया ख़ूब लम्बा-चौड़ा। पर नीचा तो देखो कितना है, फ़र्श से कुल छह इंच ऊपर ! गद्दा भी पतला -सा। पता है क्यों ? दिमाग़ में यह ख़याल चढ़ गया कि सारा सामान कमरे से बाहर निकाल कर नीचा तख़्त डालेगी तो कमरा बड़ा और ख़ाली लगेगा। ख़ाली जगह में हवा क़ाबू आ जायेगी और वह साँस ले पायेगी। साँस आने पर, कौन जाने एक रात नींद भी आ जाये। पर उम्मीद कहाँ रंग लायी। सीमेंट के कण उसी तरह हवा को बोझिल बनाये रहे। उसके फेफड़ों को चुनौती देते रहे और वह छाती मसलती रात भर इधर-उधर डोलती रही। उसे लगता उसका अजन्मा बच्चा आ कर छाती में अटक गया है। कभी-कभी महसूस होता, वह ज़िन्दा नहीं, मर चुका है। अन्दर पड़ा-पड़ा फोड़े की तरह सड़ रहा है। इसलिए साँस नहीं आती, नींद ग़ायब हो गयी है, खुली आँख बुरे-बुरे सपने आते हैं। पर पक्का पता करने का कोई तरीक़ा नहीं था। क़स्बे में न अस्पताल था, न एक्स-रे मशीन और न डॉक्टर। इन्तज़ार के सिवा चारा न था ! उस क्षण का जब पेट में दर्द की ऐंठन शुरू हो और बच्चा ख़ुद ब ख़ुद जन्म ले ले। दाई का काम तो नाल काटना और बच्चे को नहलाना भर था। प्रकृति साथ न दे तो मौत से कौन लड़ सकता है ? दाई जो कर सकती थी, किया। उस औरत की क़िस्मत ख़राब थी। बच्चे का सिर माँ के जिस्म में अटका रह गया। बाहर आ कर ही नहीं पाया। बाद में सुना, बड़े शहर में उसके परिचित कह रहे थे, फॉरसेप लगा कर बच्चे को बाहर खींच लेते तो दोनों की जान बच जाती। पर यहाँ कौन लगाता फॉरसेप ? मर गयी बच्चे समेत इसी कमरे में, इसी बड़े तख़्त पर, जिस पर तुम लेटी हुई हो। बदक़िस्मत थी बेचारी।

बदक़िस्मत या महज औरत, उमा सोचती। यह उसकी कहानी है या मेरी या हर उस औरत की, जो अपने वर्ग और स्थान से तोड़ कर दूसरी जगह फेंक दी जाती है ? जब वह शादी से पहले कॉलेज में अर्थशास्त्र पढ़ाया करती थी तो उसकी हेड ने एक बार कहा था, विवाह करते हुए जिस बात का ख़याल रखना चाहिए, वह है स्थानमूलक तुष्टिगुण, यानी प्लेस युटिलिटी। उमा समेत सब हँस दिये थे। विवाह के अर्थशास्त्रीय विवेचन पर